गांवों में तेजी से बढ़ाने होंगे इंतजाम

वैक्सीन को लेकर ग्रामीण क्षेत्रों में झिझक और कई गलतफमियां भी हैं। इन्हें दूर करने के लिए सरकार को जरूरी अभियान चलाना चाहिए और इन इलाकों में टीकाकरण की रफ्तार में तेजी लानी चाहिए।

मनोरमा शाह।।

जहां एक ओर बुरी तरह प्रभावित राज्यों और बड़े शहरों में कोरोना संक्रमण की स्थिति में हल्का सुधार दिखने से राहत महसूस की जा रही है, वहीं दूसरी ओर महामारी के गांवों में तेजी से फैलने के संकेत दिख रहे हैं। बिहार, यूपी के जिलों में गंगा और यमुना में सौ से ज्यादा लाशें बहती पाई गई हैं। इस मामले की जांच हो रही है। पता किया जा रहा है कि ये शव आखिर कहां के हैं और इन लोगों की मौत के वास्तविक कारण क्या हैं। लेकिन ऐसी अटकलें लग रही हैं कि कोरोना फैलने से गांवों में मृतकों का अंतिम संस्कार करना संभव नहीं हो पा रहा और शव नदियों में बहाए जा रहे हैं। गांवों में बड़े पैमाने पर टेस्ट की सुविधा नहीं है, लेकिन जितने भी टेस्ट हो रहे हैं, उनमें पॉजिटिव नतीजों का ज्यादा अनुपात बताता है कि संक्रमण स्तर काफी बढ़ा हुआ है। ऐसे में यह संभावना मजबूत हो जाती है कि ग्रामीण क्षेत्रों के बहुत सारे मामले कोरोना के रूप में चिह्नित नहीं हो पाते होंगे।

फिर भी, जो मामले पकड़ में आ रहे हैं, उनके आंकड़े इतना तो स्पष्ट कर ही देते हैं कि ग्रामीण क्षेत्रों में हालात काफी तेजी से बिगड़े हैं। उदाहरण के लिए 9 अप्रैल से 9 मई के बीच विभिन्न राज्यों में ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों की बदली स्थिति पर नजर डाली जा सकती है। बिहार में 9 अप्रैल को कोरोना संक्रमण के मामले शहरी क्षेत्रों में 47 फीसदी और ग्रामीण क्षेत्रों में 53 फीसदी थे। एक महीने बाद 9 मई को शहरी क्षेत्रों के मामले जहां 24 फीसदी पर आ गए, वहीं ग्रामीण क्षेत्रों में ये बढ़कर 76 फीसदी पर पहुंच गए। यूपी में 9 अप्रैल को ग्रामीण क्षेत्रों का अनुपात 49 फीसदी था, जो 9 मई को बढ़कर 65 फीसदी हो गया था। महाराष्ट्र (32 से 56), छत्तीसगढ़ (56 से 89),आंध्रप्रदेश (53 से 72) जैसे अन्य राज्य भी इसी स्थिति की ओर संकेत करते हैं। यह स्थिति ज्यादा गंभीर इसलिए है कि एक तो ग्रामीण क्षेत्रों में स्वास्थ्य सुविधाओं की पहुंच कम है, दूसरे वहां लोगों का एक–दूसरे से दूरी बरतना भी सहज नहीं है।

ऐसे में एकमात्र उपाय यही बच जाता है कि ग्रामीण क्षेत्रों में अधिकाधिक स्वास्थ्य केंद्र खोलकर लोगों में जागरूकता लाने, टेस्ट की संख्या बढ़ाने आइसोलेशन सेंटर खोलने और चिकित्सा सुविधाएं मुहैया कराने का काम तत्काल युद्ध स्तर पर शुरू कर दिया जाए। वैक्सीन को लेकर ग्रामीण क्षेत्रों में झिझक और कई गलतफमियां भी हैं। इन्हें दूर करने के लिए सरकार को जरूरी अभियान चलाना चाहिए और इन इलाकों में टीकाकरण की रफ्तार में तेजी लानी चाहिए। तभी महामारी को हराने की ओर हम एक बड़ा कदम बढ़ा पाएंगे।

धर्म भावना

धर्म-दर्शन

अशोक वोहरा।

समझने की बात है कि कुरुक्षेत्र सिर्फ एक स्थान नहीं है जहां कौरव–पाण्डव का आपस में युद्ध हुआ था, बल्कि कुरुक्षेत्र मनुष्य का मन है जहां पर पंच तत्व से बने शरीर (पांडव) में अवस्थित धर्म भावना का सौ प्रकार की दुर्भावनाओं की सेना (कौरव) के साथ धीर गंभीर मन से युद्धरत होना है अर्थात् क्रियाशील होना है अपने लिए सौभाग्य लक्ष्मी को प्राप्त करने के लिए। निश्चित रूप से भगवान विष्णु क्रियाशीलता की पराकाष्ठा है क्योंकि पूरे संसार के भरण पोषण का उन्होंने भार ग्रहण किया हुआ है। इसमें कोई संदेह नहीं कि क्रियाशील व्यक्ति का मन कुरुक्षेत्र की रणभूमि की तरह होता है जहां अनेक प्रकार के विचार उसके मन को मथते हैं। विचारों के विष बुझे तीर भगवान विष्णु को भी प्रताड़ित करते हैं शायद इसीलिए यह कल्पना की गई है कि वे शेषनाग की शैय्या पर अथाह जल राशि के बीच लेते हुए हैं।

संपादकीय

कथनी और करनी

एकबारगी ऐसा लग सकता है कि कोई देश इतने लंबे समय तक कथनी और करनी का ऐसा फर्क कैसे चलाए रख सकता है। लेकिन यह वामपंथी आंदोलन की सामान्य बीमारी रही है और संभवतरू उसके पतन का सबसे बड़ा कारण भी यही है। सच को सच कहने और डंके की चोट पर स्वीकार करने का मौजूदा संदर्भों में सबसे बड़ा उदाहरण लेनिन का माना जा सकता है। नवंबर 1917 की सर्वहारा क्रांति के चार साल के भीतर रूस में जो न्यू इकॉनमिक पॉलिसी लाई गई, उसके बारे में लेनिन ने खुद साफ–साफ कहा कि इसे समाजवाद की ओर बढ़ा हुआ कदम हर्गिज न माना जाए। यह पूंजीवाद से समझौता है, जो हम कुछ समय के लिए कर रहे हैं३। इसके बाद ऐसी साफगोई नहीं दिखती। चाहे दूसरे विश्वयुद्ध के दौरान दुनिया के मजदूरों की नुमाइंदगी के सवाल को ताक पर रखने की बात हो या खुश्चेव के दौर में 'शांतिपूर्ण सह अस्तित्व' के सिद्धांत को स्वीकारने का, हर फैसला समाजवाद की दिशा में आगे बढ़ाया गया कदम ही बताया गया। सबसे बड़ी बात कि विश्व कम्युनिस्ट आंदोलन लगभग सर्वसम्मति से उसे स्वीकार भी करता रहा। वरना सोवियत संघ का पतन दुनिया भर के कम्युनिस्टों के लिए इतना तगड़ा भावनात्मक झटका नहीं होता।

जरूरी हो जाता है कि चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के इन सौ सालों की रोशनी में वामपंथ से जुड़े कुछ बुनियादी सवालों पर विचार किया जाए तो वामपंथ की बुनियादी कसौटियों के आलोक में उन बड़े दावों को भी परखा जाए।

कुछ बुनियादी सवाल

प्रणव प्रियदर्शी।।

चीनी कम्युनिस्ट पार्टी सौ साल पूरे कर रही है। चीन में इस मौके पर एक जुलाई को होने वाले शानदार जश्न की तैयारियां काफी पहले से चल रही हैं। यह स्वाभाविक भी है। 1949 में हुई क्रांति के बाद से चीन में इसी पार्टी का शासन है। इसी के नेतृत्व में चीन कृषि प्रधान देश से औद्योगिक राष्ट्र में तब्दील होते हुए आज दुनिया की सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था बनने की ओर अग्रसर है। सबसे बड़ी बात यह कि इतना सब करके भी चीनी कम्युनिस्ट पार्टी थकी हुई नजर नहीं आ रही। ऐसा नहीं लग रहा कि उसे बाहर या अंदर से कोई बड़ा खतरा है। खतरे की बात इसलिए अहम है क्योंकि हम देख चुके हैं कि पिछली सदी के आखिरी दशक में संसार का दूसरा सुपर पावर माना जाने वाला सोवियत संघ और उसके साथ पूरा सोशलिस्ट ब्लॉक कैसे बिना किसी बाहरी हस्तक्षेप के अपने आप ढह गया। दुनिया भर में इसे ठीक ही वामपंथ की घोर विफलता माना गया।

यह सवाल हर विचारशील व्यक्ति के मन में है कि आखिर क्या बात है कि जो विचारधारा सोवियत संघ समेत दुनिया के ज्यादातर देशों के पांवों की जंजीर साबित हुई, वही चीन को तरक्की की राह पर सरपट दौड़ाए चली जा रही है? इसलिए यह और जरूरी हो जाता है कि

चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के इन सौ सालों की रोशनी में वामपंथ से जुड़े कुछ बुनियादी सवालों पर विचार किया जाए तो वामपंथ की बुनियादी कसौटियों के आलोक में उन बड़े दावों को भी परखा जाए, जो कम्युनिस्ट पार्टियां विश्व कम्युनिस्ट आंदोलन के सामने करती रही हैं।

इसमें कोई शक नहीं है कि 1949 में चीन में कम्युनिस्ट पार्टी की अगुआई में महज सत्ता परिवर्तन नहीं हुआ था, वह क्रांति थी। यानी उस परिघटना में सत्तारूढ़ वर्ग को उखाड़ कर अन्य वर्ग ने सत्ता पर कब्जा किया था। लेकिन वह सर्वहारा क्रांति नहीं थी। उस क्रांति से सत्ता पर मजदूर वर्ग का कब्जा नहीं हुआ था। खुद माओ ने उसे नव–जनवादी क्रांति कहा था। मतलब यह कि उस समय तक जिसे जनवादी क्रांति कहा जाता था, यह उससे अलग कोई चीज थी, इसमें कुछ नयापन था। वह नयापन क्या था? नई बात उसमें यह थी कि उस क्रांति में माओ ने चार वर्गों को शामिल बताया था। मजदूर और किसान के अलावा उसमें पूंजीपति वर्ग का एक हिस्सा भी शामिल था, जिसे माओ ने राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग के रूप में परिभाषित किया था।

क्रांति के बाद भूमि सुधार के जो बड़े कदम उठाए गए थे, उनसे भी इस बात की पुष्टि होती है कि जनवादी क्रांति अपने कार्यभार को पूरा कर रही थी। लेकिन मूल सवाल तो यह है कि जब 1949 में मजदूर वर्ग के बजाय पूंजीपति वर्ग सत्ता में आया, तो फिर उसके बाद वहां दूसरी क्रांति कब हुई जिसमें मजदूर वर्ग ने पूंजीपति वर्ग को बेदखल कर सत्ता पर कब्जा किया? रूस में मार्च 1917 में हुई जनवादी क्रांति के बाद नवंबर में सर्वहारा क्रांति हुई मानी गई। चीन में ऐसा कब हुआ? कुछ लोग इसका जवाब सांस्कृतिक क्रांति में तलाशने की कोशिश करते हैं। लेकिन चाहे जितनी भी छोटी या बड़ी रही हो, चाहे जितनी भी विफल या सफल रही हो, थी तो वह सांस्कृतिक क्रांति ही। तो क्या सांस्कृतिक क्रांति से राजनीतिक क्रांति का कार्यभार पूरा हो सकता है? अगर हां तो फिर राजनीतिक क्रांति की जरूरत ही क्या थी? दुनिया भर में कम्युनिस्ट आंदोलन सांस्कृतिक क्रांति से ही काम चला लेता।

सूडोकु नवताल-5266

सरल

7	8	6		1		5		2
	9			8				3
1			6	9		7		
	3	8	2		1			
2	7	5				6	3	1
			5		7	2	8	
		9		7	4			6
8				2			5	
4		2		5		9	1	7

- प्रत्येक पंक्ति में 1 से 9 तक के अंक भरे जाने आवश्यक हैं.
- प्रत्येक आड़ी और खड़ी पंक्ति में एवं 3×3 के वर्ग में किसी भी अंक की पुनरावृत्ति न हो इसका विशेष ध्यान रखें.
- पहले से मौजूद अंकों को आप हटा नहीं सकते.
- पहेली का केवल एक ही हल है.

सूडोकु नवताल -5265 का हल

2	9	5	3	1	4	6	8	7
3	6	1	2	8	7	4	9	5
8	4	7	5	9	6	3	2	1
5	7	4	1	6	2	8	3	9
1	3	6	9	4	8	5	7	2
9	8	2	7	3	5	1	4	6
6	2	8	4	7	1	9	5	3
4	5	3	6	2	9	7	1	8
7	1	9	8	5	3	2	6	4

अपना ब्लॉग

किसी प्रयास का कोई सबूत नहीं

मोहन। चीन सरकार और चीनी कम्युनिस्ट पार्टी अपनी विचारधारा और प्रतिबद्धता के बारे में चाहे जो भी दावे करती रही हों, पूंजी के तर्क को शिरोधार्य करते हुए चलने वाले तमाम देशों, कंपनियों और संस्थाओं को चीन की मौजूदगी से वैसी असुविधा नहीं होती जैसी किसी जमाने में सोवियत संघ का नाम भर सुन लेने से होने लगती थी। वर्ल्ड ट्रेड ऑर्गनाइजेशन में भी चीन 2001 में ही आ गया और पिछले दो दशकों से बिना किसी खास कठिनाई के इसमें बना हुआ है। अमेरिका समेत तमाम देशों से उसका टकराव पूंजी और श्रम के मूल तर्कों का टकराव नहीं बल्कि पूंजी के तर्क के मुताबिक होने वाला सामान्य टकराव ही है। जितने तरह की उथल–पुथल और नीतियों में जो बड़े बदलाव हम वहां देखते हैं, वे पूंजी के ही अलग–अलग रूपों के टकराव की झलक थे, चाहे वह कृषि पूंजी और औद्योगिक पूंजी का टकराव हो या फिर औद्योगिक पूंजी और वित्त पूंजी का।